धरती देती लोहा ताँबा

प्रभाकर द्विवेदी



धरती देती लोहा ताँबा

प्रभाकर द्विवेदी

ज्ञान-विज्ञान प्रकाशन

नई दिल्ली

मूल्य : रु. 15.00

© डॉ. प्रभाकर द्विवेदी ● **प्रथम संस्करण** : 1990

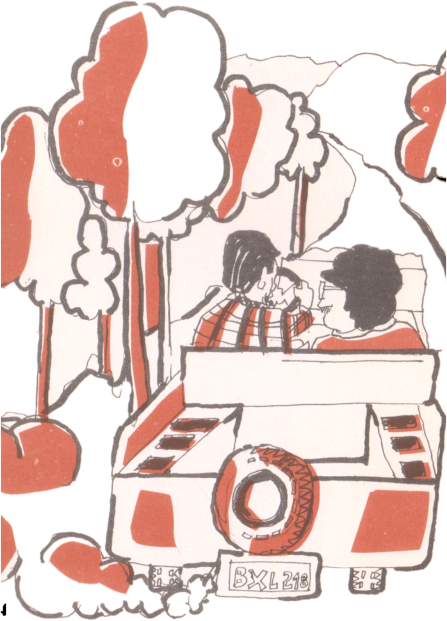
● **प्रकाशक** : ज्ञान-विज्ञान प्रकाशन, सी-4 बी/123, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058.

● **टाइपसैटिंग** : ज़ांतासा एंटरप्राइज़ेज़, 101-ए, सूर्यकिरण, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली-110001 ● **मुद्रक** : गायत्री ऑफसेट प्रेस, ए-66, सैक्टर-2, नौएडा-201301

चित्रकार : भास्कर मेन

अनुक्रम

धरती की कोख में पगला साहब	5
दैत्यों के नगर में	21
ताँबा खोदो, ताँबा खोदो	35


BXL 218

धरती की कोख में पगला साहब

दक्षिणी बिहार में एक दिन राह चलते जगन्नाथन साहब से मेरा परिचय हो गया। वे चूने के पत्थर की खदान में मैनेजर थे। इस समय वे अपनी खदान की ओर जीप में जा रहे थे। उन्होंने मुझे खदान देखने का निमंत्रण दिया और मैंने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

जीप वे स्वयं चला रहे थे। में उनकी बगल में ज्यों ही बैठा, एक झटके के साथ उन्होंने गाड़ी आगे बढ़ा दी। जीप चल दी, उस सुनसान काली चिकनी सड़क पर।

सड़क का नाम है राँची रोड। कहीं इत्मीनान से नीचे को भागती है, तो कहीं ऐसी चढ़ाई ले आती है कि विवश कर देती है जीप का गीयर बदलने को। दोनों ओर हैं महुवे, शरीफे के जंगल। घनी छाया है पेड़ों की। बहुत-सी झाड़ियाँ और पेड़ ऐसे हैं, जिनके नाम मुझे नहीं मालूम। बीच-बीच में छोटी-छोटी पहाड़ी नदियाँ मिलती हैं जिनका निर्मल जल आँखों को अच्छा लगता है। बरसात बीत जाने पर शायद इनका पानी भी सूख जाएगा। और तब रह जाएँगी उनकी वक्र गति की प्रमाण-सी, टेढ़ी-मेढ़ी पथरीली लाइनें, पेड़ों के नीचे-नीचे, बीच-बीच में लुकती-छिपती लेटी हुई।


BXL218

जंगल खत्म होने पर मिलते हैं धान के हरे खेत। बीच में काली धुली सड़क। बादल सूरज के संग आँखमिचौनी खेलते हैं। धूपछाँही धान के खेतों पर से सिहरती हुई-सी भाग जाती है। दृश्य इतना सुंदर है कि मिस्टर नाथन का चुप रहना अच्छा लगता है। जीप के चक्के कब यह सारा मार्ग तय कर लेते हैं, पता ही नहीं चलता।

सबसे पहले पड़े खदान के उच्च अधिकारियों के क्वार्टर। सुंदर कालोनी बसाने की कोशिश की गई है। इसके पार होते ही जहाँ पहुँचे, लगा कि कीचड़-काँदे के बहुत बड़े मैदान में आ गए हैं। चारों ओर अनेक लीकें पड़ी थीं—ट्रक-जीप के पहियों के निशानवाली।

नाथन साहब ने गाड़ी रोकी। मैं इस प्रतीक्षा में रहा कि वे इंजन बंद कर दें तो मैं नीचे उतरूँ। लेकिन जब उन्होंने उसे बंद नहीं किया तो मैं अपने आप ही उतर पड़ा। उन्होंने हाथ से पीछे जाने का इशारा किया तो मैंने समझा कि वे मोड़नेवाले हैं, इससे मैं पीछे की ओर चला।

पर यह क्या? जूतों समेत मेरे दोनों पाँव बालिश्त भर कीचड़ में धँस गए। पाँव उठाने चला तो लगा कि जैसे नीचे जमीन के अंदर से कोई पकड़कर खींच रहा है।

तभी निगाह जीप के चक्कों पर गई। पीछे के चक्के कीचड़ में बुरी तरह से घूम रहे थे। जूँSS की आवाज के साथ पहिए फिसल-फिसलकर घूमते थे, लेकिन जीप एक डग भी आगे नहीं खिसक रही थी।

किसी तरह से नाथन साहब ने जीप आगे बढ़ाई तो मैं फिर सवार हुआ। थोड़ा आगे जाने पर नीले रंग के पत्थरों का अंबार

पड़ा मिला। जीप रोककर नाथन ने कहा, ''उतरिए।''

मैंने अपने जूतों पर लिपटे कीचड़ को बड़ी दयनीय दृष्टि से देखा तो नाथन समझ गए। उन्होंने पास खड़े एक आदमी को बुलाकर कुछ कहा। पाँच मिनट में हम लोगों के लिए रबर के बड़े-बड़े गम बूट आ गए। उनमें पैरों को डाल हम उतरे। नाथन ने पत्थरों के ढेर को दिखाकर कहा, ''आप देखते हैं, हमने कितना चूनापत्थर (लाइमस्टोन) खोदकर जमा कर लिया है!''

मैंने चकित होकर पूछा, ''क्या इसी पत्थर को पीसकर पान में लगाते हैं?''

वे 'खो-खो' कर हँसे। बोले, ''नो, नो, नो। यह तो फ्लक्स के काम आता है।''

''फ्लक्स?''

''फ्लक्स यानी गालक। इसे नहीं जानते आप? किसी भी कच्ची धातु या अयस्क को गलाकर शुद्ध धातु बनाते समय कुछ ऐसी चीजों की भी जरूरत होती है, जो धातु की गंदगी दूर कर दें। उन्हीं को गालक कहते हैं। जैसे लोहा बनाने के पहले, कच्ची धातु को गलाते वक्त उसमें लाइमस्टोन और डोलोमाइट मिलाते हैं। ये दोनों लोहे के गालक हैं। इनसे एक तो यह होता है कि लोहा कम आँच में ही पिघलने लगता है। दूसरे इनसे लोहे की, खनिज के साथ की सारी गंदगी निकलकर कचरे के रूप में बाहर आ जाती है। तीसरे, इसकी वजह से पिघले लोहे की तरलता बनी रहती है। और तब वह साफ लोहा बड़े मजे से बहकर बाहर निकल आता है। भट्ठी के पाइप में, उसके नल में जमकर लोहा चिपकने नहीं पाता।''

''समझा, जैसे गुड़ बनाने के पहले, गन्ने के रस को उबालते



समय उसकी चाशनी में भिंडी के बीज डाल देते हैं तो सारा मैल झाग बनकर ऊपर आ जाता है।"

नाथन मुस्कराए, "आदमी आप समझदार मालूम देते हैं।"

मैंने पूछा, "बस यह चूनापत्थर केवल इसी काम आता है?"

जगन्नाथन साहब ने कहा, "यदि केवल इसी काम आता तो भी इसका महत्त्व कम न होता। यों इसके और भी अनेक उपयोग हैं। सीमेंट भी इसी से बनता है।"

फिर उन्होंने दूर तक फैले उन पत्थरों के ढेर को देखते हुए बड़े गर्व की मुद्रा में बताया, "देखते हैं आप, मैंने कितना पत्थर खुदवाकर स्टोर कर रखा है!"

"इसमें क्या है? मजदूरों को फावड़ा-बेलचा दे दिया। उन्होंने खोदकर इकट्ठा कर दिया।"

नाथन फिर 'खो-खो' कर हँसे। बोले, "यही तो कमी है अपने शहरी भाइयों में। जानते ही नहीं कि असली काम कैसे होता है।"

फिर उन्होंने दो पत्थर उठाकर मुझे दिए। बोले, "लो, इन्हें तोड़ो।"

मैंने दोनों टुकड़ों को पहले तो आपस में तड़ातड़ लड़ाया। नहीं टूटे तो उन्हें जोर से ढेर पर मारा। पर वे छिटककर वैसे ही पड़े रहे। नाथन फिर 'खो-खो' कर हँसे। बोले, "आओ, दिखाता हूँ, मैंने क्या किया है।"

जीप में बैठकर हम आगे बढ़े। थोड़ा आगे जाकर जगन्नाथन साहब ने जीप एक बड़े गड्ढे में उतार दी। सँकरा, ढलवाँ रास्ता था—कीचड़ से सना हुआ। रास्ता थोड़ा घूमा तो मैंने सामने की ओर देखा। सैकड़ों मीटर लंबा-चौड़ा गड्ढा था।



गहराई भी कम न थी। बरसात के दिन ठहरे। किसी भी क्षण, कहीं की भी मिट्टी धसक सकती थी। डर के मारे मेरे मुँह से निकला, ''इंजीनियर साहब, क्या इरादा है ?''

जवाब में वही 'खो-खो' कर हँसना। बोले, ''यहाँ पर सभी मुझे पगला साहब कहते हैं। लेकिन मैं जानता हूँ कि कोई भी काम करने के लिए पागलपन जरूरी होता है। मैं काम के पीछे पागल न होता तो इतना काम यहाँ न हुआ होता।''

जीप कीचड़ में रपट रही थी। मुझे लगा कि आज किस घड़ी में इस पागल का साथ पकड़ लिया जो मौत के मुँह में जा रहे हैं। डर के मारे मैंने हाथ जोड़ लिए और आँखें मूँद मन ही मन कहने लगा, 'भूल-चूक लेनी-देनी। जिंदगी का आखिरी पल इसी मनहूस गड्ढे में···'

नाथन 'खो-खो' कर हँसे, ''तुम्हारा बीमा हुआ है न ? यह मत भूलो कि मैं बीस साल से गाड़ी चला रहा हूँ।···आओ, उतरो।''

मैंने आँखें खोलीं तो देखा कि हम गड्ढे की तलहटी में हैं। सामने की खुली खदान में सैकड़ों मजदूर और मजदूरिनें काम कर रही हैं।

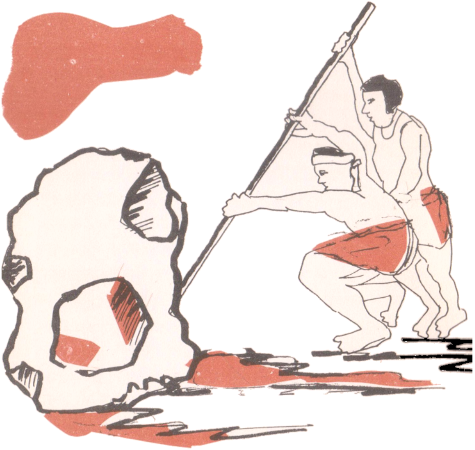
कीचड़ से भरे फिसलनेवाले उस रास्ते पर मैंने बहुत सँभल-सँभलकर अपने पैर रखे। पर जमीन काटकर बनाई गई कच्ची सीढ़ियोंवाली ऊँची-नीची पगडंडियों पर मजदूर बड़े मजे से बोझा ढो रहे थे—कोई डलिया-झाबे में, कोई बहँगी पर।

जगन्नाथन साहब ने मेरा हाथ पकड़ लिया और मुझे एक चट्टान के पास ले गए। बोले, ''धरती है बसुंधरा। अपनी कोख में वह पालती है खनिज संपदा, जिसको प्राप्त करने के लिए हम

लोग पहाड़ की छाती भी तोड़ डालते हैं। इस पहाड़ की छाती ऐसी-वैसी नहीं है। ये पत्थर यों ही नहीं टूटने के। इन्हें हम छेनी-हथौड़ी से नहीं तोड़ सकते। हमारे पास बिजली से चलनेवाले जॉय ड्रिलर हैं। इन बरमों में तेज, महीन दाँतवाले सूजे होते हैं। ये सूजे इन चट्टानों में छेद कर देते हैं। फिर कंप्रेसर की मदद से उन छेदों को हम गहरा करते हैं। बिजली का बरमा दस मीटर तक गहरा छेद करता है। उसमें डायनामाइट भरकर हम उसमें पलीते बाँध देते हैं। सबेरे तड़के जब यहाँ कोई नहीं रहता, तो उन पलीतों में आग लगा दी जाती है। और तब सुनसान में जैसे सैकड़ों बम एक साथ फटने लगते हैं! घड़-घड़, घड़-धड़...! चट्टान के सारे घमंड को यह डायनामाइट चूर-चूर करके रख देता है। इस बड़े विस्फोट के बाद छोटे-छोटे विस्फोट किए जाते हैं। कैसे? आओ बताऊँ।''

नाथन वहाँ से मुझे थोड़ा आगे ले गए। एक आदमी हाथ में पंप-जैसा औजार लिए उसे चट्टान में धँसाए हुए था। और वहाँ से पत्थर का चूरन-जैसा निकल रहा था। वे बोले, ''यह छोटा बरमा है। इससे डेढ़ मीटर गहरा छेद होता है। पूरी खदान में इसके द्वारा जगह-जगह छेद कर लेते हैं। फिर दुपहरी की छुट्टी में, जब सभी मजदूर बाहर होते हैं, यहाँ विस्फोट किया जाता है। इससे जो पत्थर टूटते हैं, उन्हें यहाँ से ये मजदूर ढोकर बाहर ले जाते हैं, जैसाकि आप देख ही रहे हैं।''

मैंने देखा, दो मजदूर बड़ी मेहनत से पत्थर के एक बहुत बड़े टुकड़े को लोहे के डंडों से खिसकाने की कोशिश कर रहे थे। एक के शरीर पर सिर्फ धोती थी, दूसरे की कमीज पीठ पर ना-कुछ के बराबर थी। मैंने उसे दिखाते हुए कहा, ''आप लोग मजूरों के



कल्याण का बड़ा खयाल रखते हैं।"

नाथन व्यंग्य समझ गए। बोले, "जो हमारे कर्मचारी हैं, उनके कल्याण के लिए हमने क्या किया है, इसे तो उनकी कालोनी में चलकर स्वयं समझ लोगे। लेकिन ये मजदूर ठेकेदारों के हैं। हम लोग खदान साफ करवाने का ठेका इन्हें दे देते हैं। ये ठेकेदार सात रुपए रोज पर इन मजदूरों को रख लेते हैं। इनका पेट भरता है या नहीं, इसकी जिम्मेदारी उन पर है।"

"आप पर नहीं है?"

"मेरा अपना क्षेत्र है। जो काम मुझे सौंपा गया है, मैं उसे लगन और मेहनत से करता हूं। बाकी और काम करने के लिए राजनीतिक लोग हैं। उन्हें राजधानी से फुर्सत हो, तो आकर यह सब सँभालें। यूनियन का काम देखें-भालें। आओ आगे चलें।"

आगे बढ़कर, हम जीप तक आए और उसी पुराने रास्ते से जगन्नाथन साहब ने जीप गड्ढे से ऊपर निकाली। गड्ढे के दूसरी ओर पत्थरों के ढेर के पास कई बड़े-बड़े ट्रक खड़े थे। नाथन साहब बोले, "इन बड़े ट्रकों को डंपर कहते हैं। इनमें यह सुविधा है कि इनसे माल उतारने के लिए मजदूर नहीं लगाने पड़ते। इनकी पूरी बॉडी खुल जाती है। इनके पीछे का हिस्सा ट्रक के इंजन की सहायता से ही तिरछा कर दिया जाता है। इससे सारा माल निकालने पर अपने आप निकल जाता है। इन्हीं डंपरों से पत्थर ढोकर उस संयंत्र तक ले जाते हैं जहाँ पत्थर कुटता-पिसता है।"

जीप पर बैठकर क्रेशर प्लांट तक आए। एक ऊँची जगह पर डंपर अपने पिछले हिस्से को उलटकर सारे पत्थर एक बड़े छेद में गिरा रहा था। नाथन साहब बोले, "ये हॉपर्स हैं। इनमें



प-थरों को डाल देते हैं, तो यहाँ से कन्वेयर बेल्ट उन्हें क्रेशर नंबर एक में ले जाती है।''

फिर हम हॉपर्स के नीचे की इमारत में गए। देखा कि सभी पत्थर अपने आप इधर-उधर पट्टों पर आ-जा रहे थे। नाथन बोले, ''क्रेशर नंबर एक से पत्थरों को स्क्रीनिंग में ले जाते हैं, जहाँ छोटे-बड़े पत्थर अलग हो जाते हैं। वहाँ से क्रेशर नंबर दो में ले जाते हैं, जिससे बड़े पत्थर और छोटे हो जाएँ।''

बाहर निकलकर आए, तो देखा कि लोहे के कई बड़े-बड़े मुँह दूर-दूर पर लगे थे, जिनमें से पत्थर निकल रहे थे। अलग-अलग साइज की ढेरियाँ थीं। एक ढेरी दिखाकर नाथन बोले, ''सिर्फ इसी साइज के पत्थर हमारे काम आते हैं। इन्हें लोहे के पत्थरों या लौह अयस्क (आइरन ओर) के साथ ब्लास्ट फर्नेस यानी धमन भट्ठी में झोंक देते हैं, जहाँ सब गलकर लोहा हो जाता है।''

''जब धमन भट्ठी में गलाना ही है तो कोई विशेष साइज ही क्यों पसंद करते हैं? आँच में तो सभी गलकर पानी-जैसा बहेगा ही।''

''एक साइज का इसलिए करते हैं कि सभी पत्थर एक साथ पिघलें। आगे-पीछे पिघलने पर अव्यवस्था हो जाएगी। और पत्थरों के इस चूरन को इसलिए धमन भट्ठी में नहीं डालते हैं कि गर्मी के मारे यह उड़ जाएगा। नीचे धातु तक पहुँचेगा ही नहीं।''

बात मेरी समझ में आई। बाहर निकल, जीप में बैठकर हम थोड़ी दूर के रेलवे स्टेशन पर आए। वहाँ भी बाहर मैदान में नीले पत्थरों का जमाव था। जमीन से मालगाड़ी के डिब्बों तक



क्रमश: ऊँची होती गई लकड़ियों की सड़क या सपाट सीढ़ी-सी बनी थी। उन पर से बड़ी तेजी से पत्थरों की ढुलाई हो रही थी।

थोड़ी दूर से मैं यह दृश्य देखने लगा। मेरे पास ही जमीन पर ईंटों-पत्थरों को जोड़कर अस्थायी चूल्हे बने हुए थे। पास ही कुछ झोंपड़ियाँ थीं। साफ पता चलता था कि इन मजदूरों ने अस्थायी निवास बनाया है। जंगल के बीच यह छोटा-सा स्टेशन है। पहाड़ी इलाका। यहाँ निर्जन में भी ये चले आए। इंसान जहाँ भी है, अपने पेट के लिए दो रोटी का जुगाड़ कर ही लेता है। चाहे चना-बाजरा पैदा करे, चाहे बोझा ढोए। चाहे बंबई की भीड़ भरी सड़क हो, चाहे यहाँ का घना जंगल।

तभी नाथन मेरे पास आए। बोले, "हमारे पास मालगाड़ियों की बड़ी कमी है। यातायात का इंतजाम हो जाए, तो काम तेजी से चले। कोयला, लोहा, कुछ भी हो, उनको ढोने के साधनों की बड़ी कमी है अपने देश में। मैंने इतने पत्थर खुदवा रखे हैं कि अभी छह महीनों तक ढोओ। मेरी खदान में कच्चे माल की कमी नहीं है। भरा पड़ा है मेरे पास चूनापत्थर। और मेरे पास ही क्यों, हिंदुस्तान में चूने की कमी नहीं है। लोहा बनाने लायक अमरीका और यूरोप के पास जैसा लाइमस्टोन है, उससे बेहतर लाइमस्टोन इस देश में बहुत है। भरा पड़ा है—कटनी, मैहर, रीवाँ, खासी की पहाड़ियाँ, जोधपुर, बीकानेर, वर्धा, चाँदा..."

मैंने टोका, "मिस्टर नाथन, बोर मत कीजिए, प्लीज!"

पगला साहब निरुत्साहित होकर मुझे यों घूरने लगे कि जैसे मैं ही पागल होऊँ।



चैत्यों के नगर में

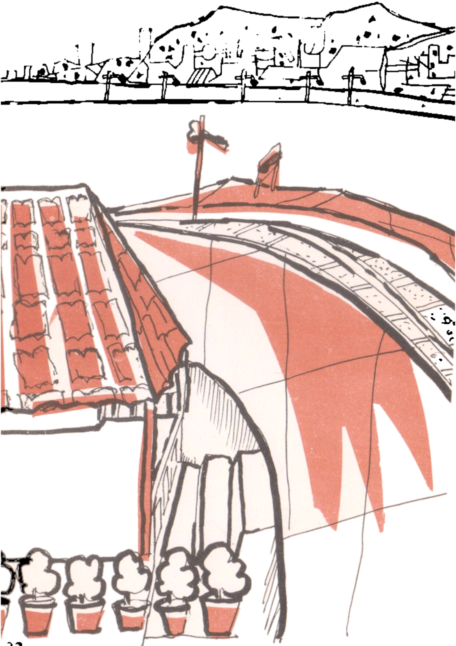
राउरकेला (उड़ीसा)
15 जून

प्रिय गोपाल,

पिछला पत्र टाटानगर से लिखा हुआ मिला होगा। उसमें मैंने आदिवासियों के बारे में चर्चा की थी। अब यहाँ आ गया हूँ तो पाता हूँ कि यहाँ उधर की अपेक्षा अधिक आदिवासी भरे पड़े हैं।

वस्तुतः टाटानगर तो चूँकि अस्सी वर्ष पुराना शहर है, इससे वहाँ 'सभ्य' लोगों की ही बस्ती अधिक है। लेकिन राउरकेला तो अभी तीस-पैंतीस वर्ष पहले तक मात्र एक गाँव था—जंगलों और पहाड़ियों से घिरा हुआ। इसीलिए यहाँ से अभी भी वन्य संस्कृति गई नहीं है। अभी भी यहाँ उस आदि जीवन की छाया के दर्शन हो ही जाते हैं। सड़क किनारे बैठे हुए चरवाहे बाँसुरी बजाते हुए। किसी पगडंडी पर, गलबाँही दिए हुए दो या तीन सहेलियाँ, बगल से गुजरती हुई, उन्मुक्त हास्य ध्वनि। हमारे-जैसे 'सभ्य नागरिक' का ध्यान ये चित्र खींच ही ले जाते हैं।

टाटा से रेल पर बैठा था तो देखी थी दोनों किनारों पर बिखरी खनिज संपदा। उधर तुम्हारे प्रदेश में रेल से दिखती है



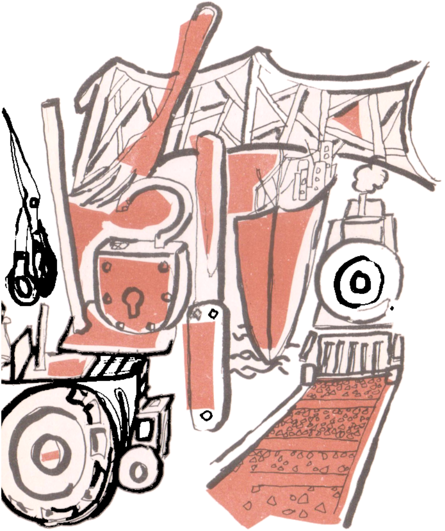
हरियाली—खेतों में उपजे अनाजों की या धरती की छाती को बाँधनेवाली छोटी-छोटी मेड़ों के दृश्य मिलते हैं या उगाए गए पेड़ों के। इधर चारों ओर लाल-काली पथरीली जमीन मिलती है, जो उगलेगी सोना। यानी उसे तोड़कर निकाला जाएगा लोहा। ठंडा लोहा नहीं, बल्कि इस्पात या फौलाद, जो आज की नागरिकता की असली रीढ़ है।

हाँ तो, टाटा से चला था तो शाम थी। तीन-चार स्टेशन पार करते-करते रात हो गई थी। साँझ की उदासी में जो जंगल अपनी पतली-पतली रेखा-जैसी नदियों के अक्षरों में निमंत्रण भेज रहे थे, वे ही अँधेरे में खोकर जैसे काट खाने को दौड़ने लगे। उसी अँधेरे में एक कौतुक देखा।

25 दिसंबर को जैसे ईसाइयों के यहाँ पेड़ों को छोटे-छोटे बल्बों से सजाते हैं और रात जगमग करती रहती है, वैसे ही यहाँ भागती हुई रेल से देखा कि असंख्य बल्ब जंगलों में दिप-दिप जल रहे थे। कोई पेड़ सूना नहीं, लेकिन कोई-कोई पेड़ ऐसे रहस्यमय रूप से जगर-मगर कर रहे थे कि आश्चर्य होता था। मानो प्रकृति के प्रकाशपुत्र जुगनू अपनी प्रकृति माँ की काली साड़ी पर सलमा-सितारे बनकर टँक गए हों।

राउरकेला के निकट आने पर दूसरा कौतुक देखा। रात के पसरे अँधेरे में धरती-पुत्र मानव ने अपनी माँ को सजाने में कोई कसर न पड़ी थी। जैसे कि कोई स्वप्ननगरी हो! राउरकेला का छोटा-सा उपनगर विद्युत दीपों से आलोकित था। जैसे किसी चैंपियन छात्र के काले कोट का चमकीला एबलेम हो!

तुम्हारा
प्र. द्वि.



गाउरकेला
16 जून

प्रिय गोपाल,

कल ही पत्र लिखा है । लेकिन आज फिर लिखने का मन हो आया क्योंकि कुछ ऐसी बातें इधर कई दिनों से मन को मथ रही थीं जो इसी खनिज से भरपूर प्रदेश में उठी हैं ।

यह एक तथ्य है कि हम इस्पात के महत्त्व को नहीं जानते जबकि विश्व में आज के युग को प्रायः ही इस्पात-युग कहा जाता है । सुई, काँटा, छुरी, ताला से लेकर मोटर, रेल, जहाज तक और कुदाल, फावड़ा, हल, ट्रैक्टर से लेकर मकान, पुल व सुरंग तक लोहे पर ही आधारित हैं । आज के आर्थिक युग का ढाँचा ही फौलाद या इस्पात पर टिका है ।

दूसरे देशों ने इस्पात के इस महत्त्व को इतना आत्मसात कर लिया है कि जहाँ हम एक किलोग्राम इस्पात का इस्तेमाल करते हैं, वहाँ अमरीका 67 कि. ग्रा. का और इंग्लैंड 42 कि.ग्रा., रूस 29 कि.ग्रा. और जापान 16 कि.ग्रा. का करता है ।

एक युग था कि हम इस्पात का महत्त्व जानते थे । तब हम हर बात का निर्णय लोहे की ढाल, तलवार, बरछी, तीर, कटारी से किया करते थे । उसी इस्पात की एक निशानी पिछले 1600 वर्षों से कुतुब मीनार के प्रांगण में खड़ी है । वह निशानी एक लाट के रूप में है । आज तक उसे न तो मोर्चा लगा और न ही उसकी चमक गई । संसार के धातु विशेषज्ञों ने इसे देखकर उस पुराने जमाने की भारतीय प्रतिभा के प्रति आश्चर्य प्रगट किया है ।

लेकिन आज ? अभी पैंतीस वर्ष पूर्व तक हमारे देश में

इस्पात के केवल तीन कारखाने थे–टिस्को, ईस्को और मैसूर आयरन एंड स्टील वर्क्स। ये तीनों कारखाने कुल मिलाकर एक वर्ष में लगभग 15 लाख टन इस्पात इनगट का उत्पादन करते थे। यह हमारे विशाल देश के लिए बहुत कम था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि-विकास पर ध्यान दिया गया था। द्वितीय योजना के बनते समय यह देखा गया कि इस योजना की समाप्ति (सन् 1962) तक हमें 60 लाख टन इस्पात इनगट की जरूरत तो पड़ेगी ही। अब समस्या यह थी कि पाँच वर्ष में ही अपने इस्पात के उत्पादन को किस प्रकार चौगुना किया जा सकता है। काफी छानबीन करने के बाद विशेषज्ञों ने हिसाब लगाया कि जो तीन कारखाने हैं, ये अपने उत्पादन को दुगना कर सकते हैं। अर्थात 15 लाख टन की बजाय 30 लाख टन तक पैदा कर सकते हैं। और शेष तीस लाख टन के लिए तीन नए कारखानों की स्थापना की योजना बनाई गई ताकि प्रत्येक कारखाना दस-दस लाख टन इस्पात इनगट पैदा करके दे तो काम चले।

तीन कारखानों के लिए तीन स्थान तलाश किए गए–राउरकेला, भिलाई और दुर्गापुर। ये स्थान क्रमशः उड़ीसा, मध्यप्रदेश और पश्चिमी बंगाल में हैं। फिर हिंदुस्तान स्टील नामक संस्था बनाई गई जिसके सभी हिस्से (शेयर) सरकार ने खरीद लिए तथा जितने रुपयों की और कमी पड़ी, वे सरकार ने कंपनी को कर्जे के तौर पर अलग से दिए। इस कंपनी को 'पब्लिक सेक्टर' के अंतर्गत माना जाता है चूँकि यह पब्लिक के रुपयों से बनी थी। टिस्को, इस्को आदि प्राइवेट सेक्टर की कंपनियाँ हैं।

यह कोई मामूली बात नहीं है कि 10 लाख टन इस्पात इनगट का उत्पादन करनेवाले कारखाने बना लिए जाएँ। लेकिन देश को इस्पात की जरूरत है, इससे इस काम को किसी भी मूल्य पर करना ही था। इसी से तीनों इस्पात के कारखाने बनाए गए जिसमें कुल मिलाकर तीन अरब रुपए लग गए।

भिलाई के लिए रूसी विशेषज्ञों, दुर्गापुर के लिए इंग्लैंड के विशेषज्ञों और राउरकेला के लिए जर्मनी के विशेषज्ञों की मदद ली गई। आगे चलकर एक और कारखाना बिहार के बोकारो नामक स्थान में स्थापित किया गया। बाद में कंपनी का नाम भी बदल दिया गया। आज इस कंपनी का नाम है सेल, यानी स्टील अथारिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड। यह कंपनी संसार की सबसे बड़ी इस्पात कंपनियों में से एक है। इस समय यह लगभग सवा करोड़ टन इस्पात इनगट का उत्पादन कर रही है।

इन्हीं में से राउरकेला इस्पात संयंत्र के पास मैं इस समय टिका हुआ हूँ। आज नए-पुराने शहर और बाजार में घूमता रहा। संयंत्र देखने के लिए आज प्रवेश-पत्र नहीं मिल सका। कल मिल जाएगा तो देखने जाऊँगा कि कैसे कच्ची धातु की मिट्टी को पीसकर, गलाकर, उसमें लोहे के एक-एक कण को खींच लिया जाता है और उससे इस्पात बनाया जाता है। कल ही पत्र लिखूँगा इसके बारे में।

तुम्हारा
प्र. द्वि.

राउरकेला
18 जून

प्रिय गोपाल,

आज देखा दैत्यों के उस विशाल परिवार को, जिस पर मनुष्य ने अपना कब्जा कर रखा है। लोहे और कंक्रीट के बने बड़े-बड़े दैत्य, जिनकी शक्ति है बिजली और आग। व्यवहार और वाणी में हैं वे कर्कश। शक्ति में राक्षसों व पिशाचों के आदर्श। किंतु उनका हृदय? वह है अत्यंत कल्याणकारी—मानवता की सेवा के लिए सदा-सर्वदा तत्पर!

ये मशीनें उगलती हैं अपने मुँह से पिघला हुआ लोहा—लाल, चमकता, चकाचौंध मारता हुआ। इन मशीनों से निकलती हैं बनी हुई लोहे की चादरें व गर्डर, जिनसे दूसरे उद्योग संस्थान बनाते हैं जहाज, टैंक, वैगन, कार की बॉडी, साइकिल व मोटर-साइकिल के मडगार्ड, चाकू, काँटे, चम्मच, बाल्टी, फ्रिज और तरह-तरह के औजार।

लेकिन उगलने के पहले ये पेट भर खाती हैं। और खाएँगी क्या, सिवाय मिट्टी और पत्थर के? सबसे पहले इनकी खुराक में होना चाहिए लौह अयस्क और चूनापत्थर। इन्हें धमन भट्ठी में झोंक देते हैं। इन भट्ठियों को जरूरत होती है कार्बन और ताप की जिसके लिए कोयला मदद करता है। कोयले की गैस को जलाकर पहले ही निकाल देते हैं। धमन भट्ठी इन सबको खा-चबाकर कच्चा लोहा उगल देती है जिसमें कार्बन बहुत होता है। इस कार्बन को आक्सीजन की मदद से अलग कर

देते हैं। आक्सीजन से लोहा साफ करने की विधि केवल राउरकेला में ही अपनाई गई है।

इसके बाद बारी-बारी से सभी मशीनें अपने-अपने शौक पूरे करती हैं और लोहे को तरह-तरह से उठा-पटककर तरह-तरह की शक्लों का बनाकर बाहर फेंक देती हैं।

इस समय मेरी आँखों के आगे वह दृश्य नाच रहा है,जिसमें एक मशीन लाल दहकते हुए लोहे की बहुत बड़ी शिला को तेजी से बाहर धकेलती है और दूसरी मशीन अपने चपटे हाथों से उस शिला को दबाकर आधी मोटाई का कर देती है और आगे भेज देती है। अगली मशीन के घूमते हुए रोलर उस शिला को और भी दबाकर इतना पतला कर देते हैं कि उससे लोहे की एक बड़ी चादर बन जाती है। तब बड़ी जोर से एक मशीन उस पर ठंडे पानी के छींटे मारती है। फिर अगली मशीन के तेज कर्कश दाँत उस चादर को काटकर अपेक्षित नाप का कर देते हैं।

मिनट भर के भीतर यह सब हो जाता है। लाल दहकती शिला, पानी की फुहारें और भाप के बादल और फिर काले रंग की लोहे की चादर।

चादरों से पाइप बनाने की मशीन और भी कौतुकपूर्ण है। जैसे चाक पर कुम्हार कच्ची गीली मिट्टी को पीट-पीटकर मनचाही शक्ल का बना देता है, वैसे ही मशीन की बड़ी-बड़ी उँगलियाँ चादर को दबाकर, घुमाकर, गोल पाइप की शक्ल का बना देती हैं और आगे लंबे-लंबे पाइप साँचे में ढले हुए निकलते चले जाते हैं। और ये सब काम मिनटों में होते हैं। अर्थात बड़ी शीघ्रता से यह सब होता है। सामान्यतः यह देखा जाता है कि जल्दी के कामों में कंजूसी नहीं की जा सकती। यानी धीरे-धीरे



किए जानेवाले कामों में ही अपव्यय को रोका जा सकता है। पर यहाँ ऐसा नहीं है। शीघ्रता के बावजूद यहाँ कुछ भी नष्ट नहीं होता।

ये मशीनें ठीक बूढ़ी दादियों की तरह हैं। दादी माँ फटे-सड़े गद्दे की रुई को इकट्ठा कर, उनके साथ कपड़ों की कतरनों को मिलाकर, तकिया बना लेती हैं। घर भर के फटे कपड़ों को इकट्ठा कर उनसे अपनी कथरी गुदड़ी सी लेती हैं। वैसे ही ये मशीनें भी लोहे की कतरनों, छीलनों को इकट्ठा किया करती हैं। उन्हें छोटी-छोटी ट्रालियों में भरकर नीचे भेजा करती हैं और इकट्ठा कर उन्हें दुबारा इस्तेमाल के लिए गोदामघर में पहुँचा देती हैं। ये सब कार्य स्वचालित रूप में स्वयं ही हुआ करते हैं। यह नहीं कि कोई कुली मजूर ट्राली को खींचकर स्वयं ले जाए। आदमी ले भी कैसे जाएगा? उसके कोमल हाथ-पाँव गर्म लोहे से जल न जाएँगे! ये तो बिजली का ही दम है कि किसी भी तरह के लोहे के टुकड़े को अपने हाथ में लेकर उसे चाहे ट्राली में रख दे, चाहे ट्राली को कहीं और पहुँचा दे।

इतने बड़े कारखाने को केवल एक दिन में नहीं देखा जा सकता। समझते-बूझते हुए एक बड़ी क्रेन को ही देखने में कम-से-कम पंद्रह मिनट लग जाएँगे। हजारों आदमियों के काम को सेकिंडों में ही करनेवाली बड़ी-बड़ी, तरह-तरह की क्रेनें झन्नाटे से आवाज करती हुई दौड़ती हैं और लोहे की बड़ी-बड़ी चीजों को चुंबक द्वारा उठा लेती हैं। कोक ओवेन में हजारों टन कोयला एक साथ दहकाया जाता है और गाड़ियों में भरकर उसे भट्ठियों में इस्तेमाल के लिए ले जाया जाता है। बीच-बीच में बनी दरारों में सिंदूरी रक्ताभ कोयले की चमक की झलक झूलती



नहीं है। और न ही भूलती है ताप और ऊष्मा की वह सिहरन जो पिघले हुए लोहे से काँपती, तैरती हुई हवा पर दौड़ी आती है!

और इन सबके ऊपर खयाल आता है उन आदमियों का जो इन मशीनों के सामने चींटी से भी छोटे हो जाते हैं, और लगता है कि यदि इन मशीनों का एक हुक भी आहिस्ते से ही किसी मनुष्य को छू ले तो उस चपेट को वह बर्दाश्त नहीं कर पाएगा। आदमी ने अपने हाथ से बनाईं ये मशीनें, और आज ये मशीनें चाहें तो उसे कुचलकर, नेस्तनाबूद करके रख दें। लेकिन छोटे-से केबिन में जो आदमी बैठा है, वह छोटे-छोटे बटनों के सहारे कब्जा रखता है इन दैत्यों पर कि वे मनचाही न कर सकें। विवश रहें आदमी के अँगूठे के सम्मुख। समर्पित रहें मनुष्य की इच्छा और चातुरी शक्ति के सम्मुख।

तुम्हारा
प्र. द्वि.

राउर केला
19 जून

प्रिय गोपाल,

यह पत्र यहाँ के जल-कल विभाग के बगीचे में बैठकर लिख रहा हूँ। यह वाटर वर्क्स एक पहाड़ी पर बनाया गया है, जो यहाँ की बस्ती में सबसे ऊँची जगह है। यहाँ पर सैलानी लोग आकर बैठते हैं और पूरे शहर को देखते रहते हैं चिड़िया की तरह।

इस समय शहर की पीली-नीली बत्तियाँ जगमग कर रही हैं जैसे दीवाली मनाई जा रही हो। छोटा-सा आधुनिक औद्योगिक

नगर झिलमिला रहा है और मैं यहाँ बेंच पर, बिजली की बत्ती के नीचे बैठा, तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ।

दिन को रोशनी में देखी थी दूर तक फैली हरी धरती, उसमें लोटती हुई ब्राह्मणी नदी। चारों ओर हैं हरी-भरी पहाड़ियाँ और बीच में बसाया गया है राउरकेला शहर जिसका अभी पैंतीस वर्ष पहले तक नक्शा भी नहीं बना था।

यहाँ बैठे-बैठे सोचता हूँ कि हमने केवल यह शहर ही नहीं बसाया है। हमने केवल यहाँ रोशनी की जगमग ही नहीं पैदा की है। यह इस्पात की नगरी अपने आदर्शों में सँजोए हुए है एक सपना। यह खुद में सपनों की लंबी श्रृंखला की एक कड़ी मात्र है। सपने हैं देश को उद्योगों, बाँधों, कल-कारखानों से बाँध डालने के। सपने हैं शक्ति के अजस्र स्रोतों को अपने चंगुल में करके उन्हें गुलाम बना लेने के ताकि ये सारे गुलाम मिलकर देश की सेवा करें। देश को जगमग करें। देश में सोई पड़ी संपदा को जगा दें।

और मैं यहाँ केवल खयाली पुलाव नहीं पका रहा हूँ। जानता हूँ कि जो मैंने देश भर में देखा है, स्थान-स्थान पर शक्ति के जिन रूपों को देखा है, वे विफल नहीं हैं। वे हैं हमारी चेतना के साकार पिंड। इसी से मैं परम आशावान हूँ।

तुम्हारा
प्र. द्वि.

ताँबा खोवो, ताँबा खोवो

मध्यप्रदेश में कान्हा किसली का राष्ट्रीय अभयारण्य है। वहाँ बाघ, हिरन, चीतल, बारहसिंघे और गौर को निकट से देख लेने के बाद मैं बालाघाट की ओर जा रहा था। सड़क पर दोनों ओर सागौन और साल के लंबे-लंबे पेड़ों की कतारें थीं। उनके नीचे बाँस की सघन झाड़ियों ने धरती का चप्पा-चप्पा ढक रखा था। इस प्राकृतिक सुषमा के बीच हमारी सड़क साँप की तरह उस पहाड़ी जमीन पर रेंग रही थी।

जीप राजेंद्र चला रहे थे और मैं उनकी बगल में बैठा शिवपुरी के जंगलों को देखने की योजना बना रहा था। सहसा मेरी बात काटकर वे बोले, ''हरे-भरे जंगल तो आपने बहुत देख लिए। अब मैं आपको वह जगह दिखाना चाहता हूँ जहाँ मनुष्य ने अपने बाहुबल और बुद्धिबल से धरती के खजाने पर कब्जा कर रखा है।''

मैंने प्रश्न की निगाह से राजेंद्र की ओर देखा। उन्होंने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा, ''पृथ्वी तो रत्नगर्भा है। इसके गर्भ में हीरे, मणि-माणिक्य ही नहीं, सोने-चाँदी-जैसे खनिज पदार्थ भी हैं। किसी जमाने में आदमी केवल सोना ही खोजता था। लेकिन सभ्यता के विकास के साथ-साथ भिन्न-भिन्न



खनिजों का उपयोग और मूल्य आदमी समझता गया। आज मानव-सभ्यता की नींव ही इन खनिजों पर टिकी हुई है।"

"तो तुम मुझे लोहे या इस्पात का कारखाना दिखाना चाहते हो?"

"नहीं! मैं आपको इस्पात से भी कीमती धातु की खदान दिखाना चाहता हूँ। आप तो जानते हैं कि मैं ताँबे की खदान में इंजीनियर हूँ। पास में ही मलंजखंड की ताँबे की खदानें हैं। वहीं मैं काम करता हूँ। आप वहाँ चलकर हिंदुस्तान की सबसे बड़ी खुली खदान देखिए। देखिए कि किस प्रकार हम लोग पत्थर तोड़कर गलाते हैं। गलाकर उसमें से ताँबा निकालते हैं।"

"लेकिन तुमने यह कैसे कहा कि ताँबा इस्पात से भी कीमती धातु है? आजकल तो ताँबे के बरतनों का रिवाज उठता जा रहा है।"

"हाँ, अब ताँबे के बरतनों का इस्तेमाल कम होता है। लेकिन पिछले साठ-सत्तर बरसों में हमारे लिए ताँबे का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। अब हमने बिजली के कामों में ताँबे के इस्तेमाल को सीख लिया है। ताँबा बिजली का सबसे अच्छा संचालक है। इसीलिए विद्युत उत्पादन केंद्रों, जेनरेटरों, टेलिफ़ोन और मोटरों के तारों और सभी तरह की बिजली की मशीनों में ताँबे का इस्तेमाल होता है। इसका सबसे ज्यादा इस्तेमाल कारतूस की खोलों में होता है। इसमें जंग नहीं लग सकता इसलिए इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।"

"पीतल भी तो ताँबे से ही बनती है?"

"हाँ, आपने यह अच्छी बात बताई। दरअसल ताँबे का एक उल्लेखनीय इस्तेमाल यह है कि इसकी मदद से कई यौगिक

मिश्रित धातुएँ बनती हैं। जैसे काँसा, पीतल और जर्मन सिल्वर।"

"हमारे देश में ताँबे की जितनी खपत है, क्या उतना ताँबा हमें भारत में ही मिल जाता है?"

"नहीं, हम अपनी खपत का केवल पाँचवाँ भाग ही पैदा कर पाते हैं।"

"ऐसा क्यों है? क्या यहाँ की धरती में ताँबे का अयस्क कम है? या अभी हम ताँबे के भंडारों को खोज ही नहीं पाए हैं?"

"दोनों ही कारण सही हैं। पृथ्वी की खनिज संपदा का पता लगाने के लिए भू-विज्ञानी बड़े ध्यान से चट्टानों का अध्ययन करते हैं। वे जमीन की सतह में छेद करते हैं। वहाँ बरमा चलाकर भीतर छिपे खनिज का पता लगाते हैं। अब इसके लिए विमान द्वारा भू-सर्वेक्षण किए जा रहे हैं। इन विमानों में अति सुग्राही, चुंबकीय, विद्युत चुंबकीय और रेडियोधर्मी यंत्र लगे होते हैं। हवाई उड़ानों के समय आँकड़े एकत्र किए जाते हैं। इन आँकड़ों के आधार पर ये यंत्र भूमि के भीतर गहराई में दबी चट्टानों की प्रकृति, संघटन, घनत्व आदि के बारे में जानकारी देते हैं। ऐसे सर्वेक्षणों ने हमारे देश में ताँबा-जैसे खनिजों के संभावित विशाल भंडारों को खोज निकालने में मदद की है।"

"विश्व में ताँबा कहाँ सबसे ज्यादा पाया जाता है?"

"यह संयुक्त राज्य अमरीका में, खासकर वहाँ के मिशीगन, एरीज़ोना, और उटाह राज्यों में सबसे ज्यादा पाया जाता है। इसके बाद चिली, जाम्बिया, ज़ायरे, सोवियत रूस, स्पेन और मैक्सिको में उत्पन्न किया जाता है।"

"और भारत में इसके भंडार कहाँ-कहाँ हैं?"

''भारत में इसकी प्रमुख खदानें राजस्थान के खेतड़ी, कोलिहन, चाँदमारी, और दरीब में; बिहार के सिंहभूमि, राखा, मोसाबिनी, घाटशिला, धोबनी, बेदिया, केंदाडीह और हजारीबाग में; आंध्रप्रदेश के अग्निगुंडला और अनंतपुर में तथा कर्नाटक के हसन और चित्रदुर्ग में हैं। मध्यप्रदेश के मलंजखंड में जितना ताँबा आँका गया था अब उससे भी अधिक मिलने लगा है। अन्य जगहों में भी ताँबे के भंडार मिलने की संभावना है।''

अचानक जीप के सामने एक लोमड़ी आ गई। फिर हमसे भी तेज गति से हमारे आगे-आगे काफी दूर तक दौड़ लगाकर उसने हमारा ध्यान बँटा लिया। इस कारण हमारी बातचीत का विषय बदल गया।

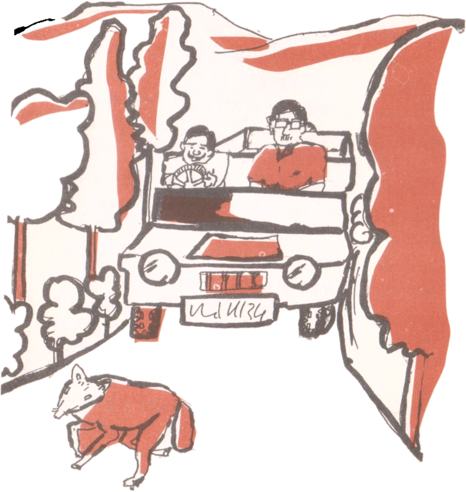
रात में राजेंद्र जीप लेकर आ गए और बोले, ''चलिए, आपको अपनी ताँबे की खदान दिखा लाऊँ।''

''रात में ? वहाँ क्या दिखेगा ?''

''हम लोग रात-दिन, चौबीसों घंटे काम करते हैं। तभी तो हमारा ताँबा-उत्पादन का लक्ष्य पूरा होगा।''

चाँदनी रात थी। हल्की-हल्की ठिठुरन भी। थोड़ी ही देर में हम जहाँ पहुँचे, वहाँ दीवाली से भी बढ़कर जगमग रोशनी हो रही थी। जाने कितने शक्तिशाली बल्बों की रोशनी में दिन-जैसी चहल-पहल थी। जमीन काटकर बनाए गए घुमावदार पहाड़ी रास्तों के बीच-बीच में बड़े-बड़े मैदान और बड़े-बड़े गड्ढे थे। उनमें काफी लोग बड़े-बड़े गम बूट पहने और हेल्मेट लगाए अपना-अपना काम कर रहे थे।

अचानक एक ट्रक-जैसे दुर्मंजिले वाहन ने अपनी भयंकर

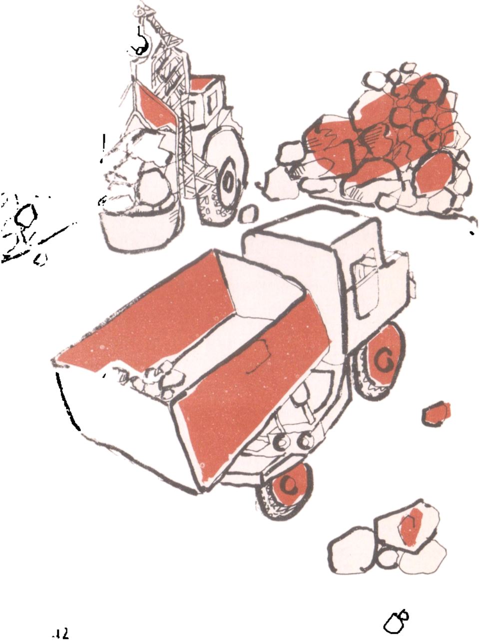


आवाज से मुझे डरा दिया। मैं कूदकर एक किनारे हो लिया। राजेंद्र ने हँसकर कहा, "डरिए मत। यह डंपर है। इसमें ट्रक से साढ़े आठ गुना ज्यादा माल भरा जाता है। इससे माल उतारने के लिए मजदूर नहीं लगाने पड़ते। इसके पीछे का मालवाही भाग इंजन की सहायता से ही तिरछा कर दिया जाता है। तब सारा माल अपने आप नीचे ढरक जाता है।"

डंपर एक बड़ी चट्टान के किनारे जाकर खड़ा हो गया। वहाँ काफी मलबा भरा पड़ा था। इसके पहले मैंने चूनापत्थर की जो खदान बिहार में देख रखी थी, वह इस खदान के मुकाबले बच्ची ही थी। वहाँ सारा काम मजदूर फावड़ों और बेलचों से कर रहे थे। माल ढोने का काम छोटे डंपर करते थे, और डंपर में पत्थरों को भरने का काम मजदूर लोग।

यहाँ डंपर के पास एक बहुत बड़ी क्रेन खड़ी थी। क्रेन के एक किनारे मशीनी बेलचा लगा हुआ था। अचानक यह क्रेन जिसे पी. एंड एच. शॉवेल कहते हैं, घूमने लगी और बेलचा स्वतः चालित हो, मलबा भरने लगा। सेकिंडों में बेलचा भर गया और क्रेन ने उसे उठाकर डंपर के पेट में डाल दिया। थोड़ी ही देर में डंपर पूरा भर गया और माल लेकर चला गया।

एक और दुमंजिले ट्रक-जैसे वाहन को दिखाकर राजेंद्र ने बताया कि यह 'ब्लास्ट होल ड्रिल' है। इस मशीन के बिजली से चलनेवाले बरमों की सहायता से जमीन में पंद्रह मीटर गहरे छेद कर लिए जाते हैं। फिर उन छेदों को बारूद से भर देते हैं। इसके बाद उस जगह को निर्जन कर दिया जाता है। पलीता लगाकर बारूद का विस्फोट किया जाता है। विस्फोट के साथ ही जमीन और चट्टान दरक जाती है और वहाँ पत्थरों का मलबा इकट्ठा हो



जाता है । इन्हीं में ताम्र अयस्क होता है जिसे डंपर भरकर ले जाते हैं ।

मैंने देखा कि कई पी. एंड एच. शॉवेल अलग-अलग डंपरों में माल भर रहे थे और डंपर उस माल को ले जाकर सांद्रक संयंत्र में पलट रहे थे ।

इसके बाद राजेंद्र हमें अपना सांद्रक संयंत्र यानी क्रेशर प्लांट दिखाने ले गए । जिस प्रकार दक्षिण भारतीय रसोइए चावल और उड़द की दाल को पीसने के लिए रगड़े में रगड़ते हैं, उसी तरह यहाँ की विशालकाय मशीन बड़े-बड़े पत्थरों को मिनटों में चूरा बना दे रही थी । उस चूरे को कन्वेयर बेल्ट के बड़े-बड़े पट्टों पर आगे बढ़ाया जा रहा था । आगे बड़े-बड़े झन्ने लगे थे । उस चूरे को इन झन्नों की सहायता से चाला जा रहा था । जैसे कोई विशाल चलनी आटे या दलिए को चालती हो । पत्थरों के आकार के हिसाब से अलग-अलग मशीनों में उन्हें किसी तरल के साथ पीसा जा रहा था । पिसकर वह सीमेंट के गारे की-सी शक्ल का हो जाता था । विशालकाय हौजों में गारे-जैसी वह लेई दाल की भाँति पक रही थी । जैसे दही मथकर मक्खन निकाला जा रहा हो । इस प्रक्रिया के बाद ही ताँबा मिट्टी से अलग हो पाता है । इस मिट्टी में सामान्यत: केवल दो प्रतिशत ताँबा होता है । यहाँ की मिट्टी में तो केवल डेढ़ प्रतिशत ताँबा ही है । इस ताँबे को सहेजकर बाकी पछोरन मिट्टी को फेंक देते हैं ।

प्रतिवर्ष उन्नीस लाख टन वजनवाली इस पछोरन मिट्टी को फेंकने के लिए मलंजखंड में जो व्यवस्था है, वैसी भारत में और कहीं नहीं है । इस मिट्टी को पानी में घोलकर तीन बड़े-बड़े नलकों द्वारा चार किलोमीटर दूर बहा दिया जाता है । ये नलके